सूफ़ी संगीत की अप्रचलित गायन शैलियाँ

अमन लता
शोधार्थी, संगीत विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला

Paper recieved on : Oct 10, 2019, May 21, 2020, Accepted : June 15, 2020

सार-संक्षेप

परमात्मा की आराधना के लिए संगीत को सर्वश्रेष्ठ साधन माना गया है। सूफी संत लगभग 8वीं-9वीं सदी में हिन्दोस्तान की धरती पर अरब की ओर से आए। सबसे पहले ख्वाजा मुईनुदीन चिश्ती अजमेरी ने महफिल-ए-समाअ का प्रचलन किया। सूफी संगीत की सबसे प्रख्यात गायन विधा कव्वाली है। कव्वाली गायन शैली सूफियों के माध्यम से ईरान होते हुए भारत आई। कव्वाली के अंतर्गत ही हम्द, नात, सलाम, कल्बाना, मधा, नक्श-ए-गुल, नक्श-ए-निगार इत्यादि का विकास और प्रचार हुआ। महफिल-ए-समाअ की प्रमुख गायन शैली कव्वाली है। जब कव्वाली गायन शैली का आगाज़ हुआ तब यह शैली सिर्फ सूफ़ी फकीरों की महफिल में ही गाई जाती थी, जिसका विषय आध्यात्मिक होता था। महफिल-ए-समाअ का उद्देश्य सूफी संत-फकीरों को हाल (वजद) की अवस्था में प्रवेश करवाना है। महफिल-ए-समाअ के आरंभ में कव्वाल सलाम का गायन कर सारे सूफ़ी पीर, पैगम्बरों व फकीरों को अपना सजदा अता करते हैं। सलाम के उपरांत नाअत-ए-रसूल का गायन किया जाता है, जिसमें सरकार-ए-दो आलम नबी-ए-पाक की शान और शौकत गाई जाती है। फिर मनक़वत नामक शैली गाकर फकीरों को सरकार से जोड़ा जाता है जिसे मौला अली सरकार अर्थात् हज़रत मौला अली मुर्तज़ा की शान में गाया जाता है। मनक़वत के बाद मधा का गायन होता है। इसके उपरांत मौजूदा दरबार या दरगाह शरीफ के फकीर की प्रशंसा ब्यान की जाती है और फिर श्रोताओं की फरमाइशें भी पूरी की जाती हैं। महफिल-ए-समाअ की अंतिम शृंखला में कव्वाल लोग 'रंग' पढ़कर पीर-ओ-मुर्शिद को सजदा अता करते हैं। 'रंग' हजरत अमीर खुसरो की रचना है जो कि उन्होंने अपने मुर्शिद निज़ामुद्दीन औलिया की शान में कलमबद्ध किया था। इनमें से कुछ गायन शैलियाँ अब प्रचार में नहीं है और कुछ का ज़िक्र पुस्तकों में ही मिलता है जैसे कि—कल्वाना, नकश-ए-गुल, नकश-ए-निगार, बसीत, हमद आदि जो अब अप्रचलित गायन शैलियाँ हैं, जैसे-जैसे कव्वाली खानकाहों से और महफिल-ए-समाअ से निकलकर अन्य स्थानों पर पहुँची वैसे-वैसे इसमें नए-नए विषयों का समावेश होता गया और इसका स्वरूप परिवर्तित होता गया। कव्वाली ने संसारिक विषयों को ग्रहण किया और इसकी पारम्परिक पेशकारी में सम्मिलित कई गायन-शैलियाँ आलोप होती गई। सूफ़ी संगीत से सम्बन्धित हर गायन शैली अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है। इस लिए इसकी हर शैली को भविष्य के लिए सुरक्षित रखना आवश्यक है। इस शोध-पत्र में माध्यमिक स्त्रोतों को आधार बनाया गया है।

मुख्य शब्द : सूफी, कव्वाली, वजद, नाअत, मधा

शोध-पत्र

सूफ़ी संत लगभग 8वीं-9वीं सदी में हिन्दोस्तान की धरती पर अरब की ओर से आए। जब ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती अजमेरी (1142-1236) सर्वप्रथम भारत आए तो उनको ज्ञात हुआ कि यहाँ के लोग दिन-रात मन्दिरों में भजन और कीर्तन किया करते हैं जिस कारण उन्होंने सूफ़ियों की विचारधारा के प्रचार-प्रसार हेतु संगीत को माध्यम बनाया। सूफ़ी फ़कीरों ने भारत के संगीत को आत्मसात किया तथा अरबी और भारतीय संगीत के सम्मिश्रण से अनेक प्रयोग किए। इन प्रयोगों के परिणामस्वरूप संगीत की नई धारा का उदय हुआ। ये धारा सूफ़ी खानकाहों का संगीत बनकर हमारे सामने आई।

सूफ़ी संगीत की प्रमुख गायन शैली कव्वाली है। जब कव्वाली गायन शैली का आगाज़ हुआ तब यह शैली सिर्फ सूफ़ी फ़कीरों की महफ़िल में ही गाई जाती थी, जिसे महफ़िल-ए-समाअ कहा जाता था। महफ़िल-ए-समाअ का उद्देश्य सूफ़ी संत-फ़कीरों को हाल (वजद) की अवस्था में प्रवेश करवाना है। महफ़िल-ए-समाअ के माध्यम से सूफी संतों को अल्लाह की प्राप्ति होती है। इसी कारण सूफ़ियों ने महफिल-ए-समाअ को बहुत महत्त्व दिया। कव्वाली गायन शैली सूफ़ियों के माध्यम से ईरान से होते हुए भारत आई। कव्वाली के अंतर्गत ही हम्द, नात, सलाम, कल्बाना, मधा, नक्श-ए-गुल, नक्श-ए-निगार इत्यादि का विकास और प्रचार हुआ। यह भी माना जाता है कि—"अमीर खुसरो ने कव्वाली के अन्तर्गत जिन नवीन शैलियों का निर्माण किया वे कौल, कल्बाना, नक्श-गुल आदि के नाम से प्रसिद्ध है।"[1] अमीर खुसरो ने अनेक रागों व तालों का भी आविष्कार किया। आपको भारतीय तथा अरबी

संगीत के साथ-साथ कविता लेखन का भी विशेष ज्ञान था। अमीर खुसरो, शेख निज़ामुद्दीन चिश्ती जी के मुरीद थे और शेख साहिब को कव्वाली बहुत प्रिय थी जिस कारण उन्होंने अपनी खानकाह में अनगिनत कव्वाल बच्चों को पनाह दी और आपने अपनी वसीयत तक में लिखा कि उनके जनाज़े के साथ कव्वाल लोग गाते हुए जाने चाहिए।''[2] इस तरह चिश्ती परम्परा के सूफ़ी फ़कीरों ने कव्वाली को श्रेष्ठ गान की श्रेणी में रखने में पूरा योगदान दिया।

कौल शब्द का अर्थ एवं परिभाषा

''अरबी भाषा का एक शब्द है—कौल। इसका साधारण अर्थ है—वार्ता, बात कहना, कथन करना आदि, कौल से अरबी शब्द 'कव्वाल' और कव्वाली बने हैं।''[3]

कव्वाली की शाब्दिक उत्पति कौल शब्द से हुई—''कौल और कव्वाल शब्द भले ही भारतीय भाषा के शब्द न हो परंतु कव्वाल शब्द के बाद 'ई' लगाने के कारण ही 'कव्वाली' शब्द हिन्दी व्याकरण के अनुसार बन जाता है। किसी भी अरबी या फारसी 'शब्दकोष' में कव्वाली शब्द नहीं मिलता है।''[4]

सूफ़ी शब्द के बारे में विद्वानों के मत—

''सूफ़ी अपने ज़ाहरी लिबास के कारण ही सूफ़ी कहलाए। ये इसलिए हुआ कि भेड़ों की ऊन के कपड़े पहनना नबियों, वलियों व सूफ़ियों की खास निशानी रही है।''[5] सूफ़ी संत-फ़कीरों ने कव्वाली गायन शैली का बहुत प्रचार व प्रसार किया, जिससे कव्वाली आम जनता में गाई और सुनाई जाने लगी। सूफ़ी फ़कीरों के वचनों में हमेशा ही प्रेम भाव मौजूद रहा चाहे वो इस दुनिया के लोगों के लिए हो या सारी कायनात के मालिक के लिए हो।

''अबुल-कासिम-अलकशरी जी ने अपनी जगत् प्रसिद्ध पुस्तक 'रिसाला' में लिखा है कि 'सूफ़ी' शब्द अरबी भाषा के 'सफ़व' धातु में से निकला है और इसके अर्थ हैं—संशोधन करना, साफ करना, पवित्र बनाना आदि।''[6]

आचार्य बृहस्पति लिखते हैं कि—''अपने विचारों के प्रचार के लिए मुस्लिम सूफ़ी उस युग में यहाँ आ गए थे जिस युग में किसी भी मुस्लिम हमलावर का पैर भारत की भूमि पर नहीं पड़ा था।''[7]

सूफ़ी फ़कीरों का हमेशा से मकसद उस अल्लाह पाक की खिदमत करना रहा है परंतु रहन-सहन, इबादत करने व दुनिया के लोगों के साथ मेल मिलाप में विभिन्नता होने के कारण सूफ़ी मत में विभिन्न सम्प्रदायों और सिलसिलों का निर्माण हुआ, जिनमें चिश्ती, कलन्दरी, कादरी, सुहरावर्दी, नकशबन्दी व साबिरी सिलसिले प्रचलित हैं। इनमें से कादरी, कलन्दरी, चिश्ती नाम के सिलसिलों ने कव्वाली का ऊँचे स्तर पर प्रचार व प्रसार किया। जैसे-जैसे सूफ़ी फ़कीर दुनिया में विचरण करते गए उसी तरह कव्वाली का प्रसार भी होता गया।

महफ़िल-ए-समाअ

महफ़िल-ए-समाअ का सूफ़ी संगीत में विशेष महत्त्व है। इसके बारे में और जानकारी अर्जित करने से पूर्व महफ़िल और समाअ के बारे में जान लेना आवश्यक है। महफ़िल व समाअ दो भिन्न-भिन्न शब्द है और दोनों के अर्थ भी अलग-अलग है। उर्दू हिन्दी शब्दकोष के अनुसार—''महफ़िल, सभा, समाज, जलसा, मजलिस, नाच, गायन के लिए इकेठे होने के स्थान को कहते हैं।''[8]

''समाअ अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है—'सुनना'। उर्दू व पंजाबी में इस लफ़ज़ के अर्थ हैं, गीत या राग सुनना भाव नाच, गाना व रकस-ओ-सरूर।''[9] सूफ़ी फ़कीरों ने समाअ को इबादत (खुदा की इबादत) के रूप में अपनाया व कुछ नियम भी बनाए। बिना नियमों के समाअ का आयोजन उचित नहीं है क्योंकि यह एक ऐसी विधा है जो सूफ़ी संतों फ़कीरों को हाल की अवस्था में पहुँचाकर अल्लाह के रूहानी रंग में रंग देती है।

महफ़िल-ए-समाअ के नियम

समाअ के आयोजन स्वरूप सूफ़ी फ़कीरों ने कुछ नियम निर्धारित किए हैं। निजी साक्षात्कार दौरान सूफ़ी फ़कीर मियां शमशुद्धीन साबिरी महफ़िल-ए-समाअ के बारे में फरमाते हैं कि समाअ के कुछ विशेष नियम हैं उन्होंने विशेषकर तीन नियमों पर ज्यादा तवज्जो दी गई है—

1. **ज़मा**—(वख़्त) महफ़िल-ए-समाअ के अनुकूल समय होना चाहिए, ऐसा समय न हो जिससे किसी को भी परेशानी का सामना करना पड़े, मतलब सारे कार्यों की स्माप्ति के उपरांत ही महफ़िल का आगाज़ होना चाहिए।
2. **अखवान**—जो भी श्रद्धालुगण महफ़िल में शामिल होने वाले हैं या जो लोग समाअ में शिर्कत करने वाले हो वो लोग महफ़िल में पढ़े जाने वाले या गायन किए जाने वाले कलामों की रमज़ से भली भाँति परिचित हो, वह कलाम व समाअ से सम्बन्ध रखने वाले भेद और असूलों के ज्ञाता होने चाहिए क्योंकि किसी नासमझ (अनाड़ी) के कारण पूरी महफ़िल का माहौल खराब हो सकता है। बजुर्गों ने अपने अंदरूनी भेदों को 'कौल' के द्वारा व्यक्त किया, उन भावों को पूरी तरह ले समझने वाले लोग होने चाहिए।
3. **मकान**—कव्वाली की महफ़िल बिल्कुल अनुकूल स्थान पर होनी चाहिए, मतलब किसी चौराहे पर या शोर शराबे पर नहीं होनी चाहिए।''[10]

महफ़िल-ए-समाअ दौरान सूफ़ी फ़कीरों पर जो प्रभाव पड़ता है उससे वह अल्लाह पाक के और भी नज़दीक पहुँच जाते हैं। महफ़िल में सूफ़ी फ़कीरों को जो रूहानी अनुभव होता है उसको ज़िक्र, वज्द, रक्स-ओ सरूर कहते हैं।

ज़िक्र—सूफ़ी परम्परा के सन्दर्भ में, ज़िक्र से भाव उस अल्लाह पाक

की बातचीत दौरान चर्चा करना जिसमें रूहानियत भरपूर कथा हो सकती है, जैसे कि दूसरे धर्मों में ईश्वर का स्मरण करने को अहमियत दी गई है। यहाँ खुदावंद करीम का ज़िक्र होता है वहाँ अल्लाह पाक की आमद होती है। ज़िक्र का सुप्रसिद्ध व प्रचलित रूप 'समाअ' है। महफ़िल-ए-समाअ का उद्धेश्य अल्लाह पाक का निरंतर ज़िक्र है जिसको कव्वाल गायन द्वारा पेश करते हैं और पीर फ़कीर सुनते हैं।

डॉ. निवेदिता सिंह अनुसार—''सूफ़ीमत में सुनना विशेष अर्थों पर निहित है भाव यह है कि सुनने वाला जिस चीज़ को सुन रहा है उस में पूर्ण रूप से लीन हो जाए और परमानन्द की अवस्था को प्राप्त कर पाए।''[11]

वजद—परमानन्द की अवस्था ही सूफ़ी शब्दावली में वजद की अवस्था है। समाअ के दौरान सूफ़ी फ़कीर हाल या वजद की अवस्था में प्रवेश कर जाते हैं, यह एक ऐसी अवस्था होती है जिस कारण इन फ़कीरों की आत्मा उस अल्लाह पाक तक पहुँचने के लिए समाअ के सहारे अपनी यात्रा तय करती है। उस खुदाबंद करीम की आमद से फ़कीर वजद में आ जाते हैं और इसके उपरांत उनके शरीर के हाव-भाव तब्दील हो जाते हैं तथा कभी-कभी नाचना, आनंद की प्राप्ति में कम्पन होना जैसे लक्षण भी दिखाई देते हैं।

''हज़रत दाता गंज बख्श कश्फ़-उल-महिजूब में लिखते हैं कि—''वजद की कैफ़ियत (ज़ज्बा, भाव) को बयान नहीं किया जा सकता क्योंकि यह वो ग़म है जो मुहब्बत में मिलता है इसलिए यह ब्यान से बाहर है।''[12]

रक्स- ओ-सरूर

वजद दौरान सूफ़ी फ़कीर जब पूरे जोश से नाचते व झूमते हैं उसको रक्स (नाच) और सरूर (खुमार) कहा जाता है। कुछ सूफ़ी सिलसिलों में महफ़िल-ए-समाअ दौरान नाचने की परम्परा है जो वज्द में पहुँचने पर मुकाम पाती है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि महफ़िल-ए-समाअ दौरान सूफ़ी फ़कीरों की भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ होती हैं जिसको वो समाअ के समय प्राप्त करते हैं।

सूफ़ी संगीत की विविध गायन शैलियाँ

कव्वाली गायन विधा के साथ-साथ कुछ और गायन शैलियों का भी जन्म हुआ जैसे कि—नाअत-ए-शरीफ, मधा, हदीस, धमाल, मनक़वत, रंग, हम्द, कल्बाना, सलाम, नक्श-ए-गुल, नक्श-ए-निगार और बसीत आदि। यह गायन शैलियाँ सूफ़ी फ़कीरों की महफ़िल का अभिन्न भाग थी। जब भी कव्वाली की महफ़िल होती थी तब कव्वाल पीरों फ़कीरों की खानकाहों में इनका गायन किया करते थे इसी कारण इन गायन शैलियों के बारे में जानना अति आवश्यक होगा।

जब कव्वाली की महफ़िल होती है तो उस समय कव्वाल पीरों फ़कीरों की खानकाहों में इन गायन शैलियों का गायन करते हैं। इन शैलियों का सूफ़ी सिलसिलों में एक विशेष स्थान है जैसे कि कलन्दरी सिलसिले में धमाल को महत्त्व दिया जाता है व चिश्ती सिलसिले में रंग पढ़ा जाता है। रंग अमीर खुसरो जी की ही रचना है जो उन्होंने अपने पीर-ओ-मुर्शिद ख़्वाजा निजामुद्दीन औलिया साहिब की शान में लिखा था। महफिल-ए-समाअ के कुछ कायदे कानून होते हैं जो कि सूफ़ी फ़कीरों द्वारा निश्चित किए जाते हैं और जिनकी पालना हर आम-खास व्यक्ति करता है। कव्वाल सूफ़ी फ़कीरों द्वारा रची रचनाओं का गायन करते हैं और महफिल के नियमों का पालन करते हुए उसको उसके अंतिम चरण की तरफ ले जाते हैं। इन शैलियों का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार हैं—

नाअत—रसूल इल्लाह पाक की तारीफ़ को नाअत कहा जाता है। दूसरे शब्दों में मुहम्मद साहिब की प्रशंसा में जब कव्वाल गाते हैं उस को नाअत कहते हैं। नाअत को पारम्परिक तौर से गाने वाले कलाकार साज़ों के बगैर भी इसका गायन करते हैं परंतु आजकल बहुत से कव्वाल इसे राग, तालबद्ध करके भी गाते हैं। उदाहरण स्वरूप नाअत-ए-रसूल के कुछ बोल इस प्रकार हैं—

''फ़लक के नजारो ज़मीं की बहारों
सब ईदें मनाओ हजूर आ गए हैं''[13]

मधा—जिस कव्वाली में कव्वाल हज़रत जनाब गौंस पाक ग्यारहवीं वाली सरकार की तारीफ करते हैं उसे मधा कहा जाता है। इसे कव्वाल विभिन्न

कादिरी सम्प्रदाय के दरबारों या दरगाहों में पेश करते हैं जैसे कि—

घबराने का क्या है काम
विरध ज़ुबां हो सुबहो शाम
मुश्किल आसान हो जाएगी
लेले गौंस पिया का नाम
जीलानी जीलानी जीलानी हक''[14]

हदीस—जो शब्द या वचन मुहम्मद सल्लै अल्लाह बस्सलम हज़रत मुहम्मद साहिब अपनी मुबारिक ज़ुबान से अपनी जमात में अपने पाक मुख से फरमाते हैं उन वचनों को हदीस कहा जाता है।

अमीर खुसरो ने इस हदीस शरीफ को तराने की शक्ल दी, जिसको सुनकर हर कोई झूम उठता है, वह इस प्रकार है—

''मन कुन्तों मौला, फा-हाज़ा अली युन मौला
दरा दिल दरा दिल दर दानी
तोम तोम ता ना ना नाना ताना ना नारे।''[15]

धमाल—सूफ़ी परम्परा में कलन्दरी घराना या सिलसिला बहुत लोकप्रिय है। इस घराने के फ़कीरों को मस्त कलन्दर भी कहा जाता है। जब महफ़िल 'हाल' में गाया जाता है तब विशेष कर कव्वाल लोग धमाल गायन शैली का गायन करते हैं। धमाल उस गाने का नाम है जो सूफ़ियों की महफ़िल 'हाल' में गाया जाता है। इस दौरान सूफ़ी फ़कीर खड़े होकर एक दूसरे का हाथ पकड़ कर और एक घेरा बना कर नाचते हैं और सभी के पाँव कव्वाली के गायन के वज़न के साथ उठते हैं व बढ़ते हैं। तब उस गाने के साथ तबला या ढोलक से जो ताल बजाई जाती है

उस ताल का नाम धमाल है। कव्वाल लोग धमाल से सम्बन्धित बहुत सारी कव्वालियाँ गाते हैं, लोकप्रिय धमाल के बोल इस प्रकार है—

''लाल मेरी पत्त रखियो भला
झूले लालन सिंधड़ी दा सेवन दा
अली शाहबाज़ कलन्दर
दमा दम मस्त कलंदर।''[16]

मनक़वत—कव्वाल बहुत सारी महफ़िलों और दरगाहों पर कव्वाली का गायन करने जाते हैं और हर दरबार के सेवादार व पीर अलग-अलग होते हैं। कव्वाल जिस भी जगह जाते हैं उस दरबार से सम्बन्धित कलाम पेश करते हैं। अन्य शब्दों में जब कव्वाल अपने मनोभावों को गायन के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं उसे मनक़वत कहा जाता है—

''ना करना चरणों से अब जुदा
औ कलीयर के राजा।''[17]

रंग—रंग हज़रत अमीर खुसरो की रचना है। जब महफिल-ए-समाअ चर्मोत्कर्ष पर पहुँचती है उस समय कव्वाल रंग बढ़ते हैं। रंग को शिज़रा भी कहा जाता है जिस का अर्थ है वंशावली। रंग गाने की प्रथा पुराने समय से लेकर आज तक उसी ढंग से चली आ रही है। पारम्परिक कव्वाल रंग का गायन राग बागेशवरी और तीन ताल में करते हैं। अधिकतर कव्वाल रंग हर महफ़िल में गाते हैं, रंग के बोल इस प्रकार हैं—

''आज रंग है हे मां रंग है री
आज रंग है''[18]

हम्द—हम्द अल्लाह पाक की तारीफ को कहा जाता है। इसमें और किसी का भी नाम नहीं लिया जाता। अधिकतर कव्वाल हम्द से ही महफ़िल-ए-समाअ की शुरुआत करते हैं। इस्लाम में मान्यता है कि कुरान ग्रन्थ में दर्ज सारा ज्ञान अल्लाह की तरफ से नज़र हुआ है। कुरान को अल्लाह की आवाज माना जाता है। हम्द की रचना का उदाहरण इस प्रकार है—

''मेरे अल्लाह मेरे अल्लाह
जिस्म में मेरे जब तक ये जान रहे
तेरे सदके मेरे महबूब पे कुर्बान रहे
कुछ रहे न रहे ये दुआ है अमीन
निज़ा के वख्त सलामत मेरा ईमान रहे।''[19]

कल्बाना—इस गायन शैली में अरबी और हिन्दी भाषा के शब्दों का मिश्रण और कई तालें शामिल रहती हैं। ''कल्बाना का वास्तविक नाम 'कल्बहू' है।''[20] इसमें एक से अधिक तालों के प्रयोग होने के कारण कुछ विद्वान इसे 'ताल-सागर' भी कहते हैं। इसके हर टुकड़े में इसकी ताल बदल जाती है, इस कारण यह आजकल बहुत कम प्रचार में है।

सलाम—सलाम का अर्थ किसी बड़े बुजुर्ग के आगे झुकना होता है। जब कव्वाल सूफ़ी पीरों-फ़कीरों की दरगाह पर जाते हैं उस समय सलाम पढ़ते हैं। सलाम महफ़िल की शुरुआत में पढ़ा जा सकता है या बाद में भी। ज़्यादातर कव्वाल महफ़िल की समाप्ति में ही सलाम पढ़ते हैं। प्रसिद्ध कव्वाल हरमेश रंगीला जी अनुसार सलाम इस तरह होता है—

''अस्सलाम-अस्सलाम मेरी अस्सलाम
तेरे दर पे बार बार अस्सलाम
जो तेरे इश्क में तेरा जिक्र करती है
उस जुबान को सलाम
जिस जगह पे तू रहता है उस जगह को सलाम
अस्सलाम-अस्सलाम मेरी अस्सलाम।''[21]

नक्श-ए-गुल—जिन गीतों का काव्य फारसी भाषा में होता है उसे नक्श व गुल कहते हैं। ये बहार के मौसम और बहार रागों में गाए जाते हैं। यह गीत एक शेयर का ही रहता है। इसमें एक पंक्ति में स्थाई और दूसरी पंक्ति में अंतरा होता है, ऐसी एक बंदिश—

राग—सूहा - बहार **ताल**—आड़ा चैताल

स्थायी—अश्क रेज आमदस्त चूं अबर बहार

अंतरा—ए साकिया गुल बेरजह बादह बहार''[22]

नक्श-ए-निगार—यह गाना फारसी जुबान के शब्दों में होता है। इसमें फारसी का एक शेयर या रूबाई होती है। अगर एक शेयर हो तो उसका एक मिस्रा स्थाई और दूसरा मिस्रा अंतरे में होता है। अगर रूबाई हो तो दो मिस्रे स्थाई में और दो मिस्रे अंतरे में होते हैं। नक्श निगार, मल्हार ऋतु के रागों में गाया जाता है।

बसीत—यह गायन शैली चतुरंग की तरह गाई जाती है। जैसे चतुरंग के चार भाग होते हैं उसी प्रकार बसीत के हर टुकड़े में अलग-अलग राग, बन्दिश की सूरत में होते हैं। इसी कारण विद्वान बसीत को राग सागर भी कहते हैं। बसीत की बंदिश इस प्रकार है—

राग—जंगला सात मात्रा कव्वाली—ताल

स्थायी—खुसरो रैन सुहाग की जागी पी के संग

अंतरा—तन मरा मन पीऊ का दोऊ भये एक रंग।''[23]

बदलते संदर्भों में सूफ़ी संगीत की अप्रचलित गायन शैलियाँ

महफ़िल-ए-समाअ का आगाज़ 'सलाम' से होता है, सलाम के गायन द्वारा सारे सूफ़ी पीरों-फ़कीरों व पैगम्बरों को सजदा अता किया जाता है। इसके उपरांत 'नाअत-ए-रसूल' का गायन होता है यह इस्लाम धर्म के वानी या रसूल हज़रत मुहम्मद साहिब की शान-ओ-शौकत ब्यान करने हेतु गाई जाती है। इसके बाद 'मधा' का गायन होता है जिसमें हज़रत अब्दुल कादिर जीलानी मीरां गौंसपाक ग्यारवीं वाली सरकार की तारीफ होती है। फिर 'मनक़वत' पढ़ा जाता है जिसके द्वारा कव्वाल जिस दरबार में गायन कर रहे होते हैं उस दरगाह या दरबार के पीर

फ़कीर व बजुर्गों की शान में अपने मन के भाव व्यक्त करते हैं, महफ़िल के अंतिम मुकाम पर कव्वाल 'रंग' का गायन करते हैं। रंग अमीर खुसरो द्वारा रचित है जो कि उन्होंने अपने मुर्शिद हज़रत निज़ाम-उद्ध-द्धीन औलिया की शान में रचा था।

यह गायन शैलियाँ महफ़िल-ए-समाअ का अभिन्न अंग थीं और इनका गायन पक्के रागों, तालों और स्वरवद्ध तरीके से होता था। इन शैलियों की भाषा अरबी, फारसी या उर्दू थी, इसी कारण कुछ गायन शैलियाँ विलुप्त होती चली गई। जब कव्वाली ने अपने अध्यात्मिक सन्दर्भ को छोड़ा तो समय के बदलाव से इसकी हमरूतबा गायन शैलियाँ की सार्थिकता भी कम होती चली गई। फलस्वरूप कव्वाली मुख्य रूप से प्रचलन में आ गई और बाकी गायन शैलियाँ धीरे-धीरे अप्रचलित हो गई। कव्वालों ने भी इन शैलियों का उपयोग आंशिक रूप में कव्वाली के भीतर ही करना आरम्भ कर दिया व इनकी स्वतंत्र पेशकारी बहुत कम हो गई। केवल उर्स व विशेष महफ़िलों दौरान जहाँ समाअ के नियमों को समझने व नियमों का पालन करने वाले लोग या श्रोतागण होते हैं, केवल वहाँ ही ऐसी शैलियों की पेशकारी कव्वाल लोगों द्वारा सुनी जा सकती है। इस सारी प्रक्रिया दौरान नक्श-ए-गुल, नक्श-ए-निगार, कल्बाना व बसीत आदि गायन शैलियाँ बिल्कुल लुप्त हो चुकी हैं।

समय के बदलाव ने सूफ़ी संगीत को शाही दरबारों में पहुँचा दिया, जब यह संगीत शाही दरबारों की सरपरस्ती में पहुँचा तो इसका रूप बदला हुआ नज़र आया। तब इसमें नया रंग संकलित हुआ जिसे शृंगारिक पक्ष कहा जाता है। अब कव्वालों ने बादशाहों व अपने सरपरस्तों की फरमाइश अनुसार कव्वालियों की रचना करना आरम्भ कर दिया जिसके फलस्वरूप यह गायन शैली सिर्फ दरगाहों तक सीमित न रहकर अलग-अलग स्थानों पर गाई जाने लगी। सन्दर्भ और स्थान बदलने के कारण इसमें और बहुत सारे रंग शामिल हो गए जैसे कि संयोग पक्ष, वियोग पक्ष, वीर पक्ष आदि। 20वीं सदी तक पहुँचते हुए धीरे-धीरे यह विधा स्टेजी बन गई और मंच पर आने के उपरांत इसमें और भी कुछ नए विषय सम्मिलित हो गए। जैसे कि बच्चे के जन्म पर गाई जाने वाली कव्वाली, शादी के समय की कव्वाली, देश भक्ति की कव्वाली व प्रौढ़ और युवा लोगों की फरमाइश अनुसार किस्सा गायन भी इस गायन शैली का उप भाग बन गया।

आधुनिक काल को मीडिया का युग भी कहा जाता है और मीडिया ने सूफ़ी संगीत को हर आम व खास वर्गों तक पहुँचाया है। इस मीडिया का ही

अटूट अंग फिल्में या चलचित्र हैं। हिन्दी फिल्मों में सबसे पहली प्रसिद्ध कव्वाली फिल्म 'जीनत' में गाई गई जो इस तरह है—

''आहें न भरी शिकवे न कीए
कुछ भी न जुबान से काम लिया
इस दिल को पकड़ कर बैठ गए
हाथों से कलेजा थाम लिया।''[24]

इस कव्वाली में पुरुषों के साथ-साथ महिला कलाकारों ने भी अपना स्वर दिया जिनमें नूरजहां, ज़ोहरा, कल्याणी व बाकी साथी कलाकार थे। इसका विषय प्रेम पर आधारित है।

संगीत निर्देशकों ने कव्वाली गायन को विभिन्न रागों व रंगों में सुरबद्ध किया। अब कव्वाली गायन के असल रूप के साथ-साथ कुछ अलग पहलू भी सामने आए, जैसे कि इश्क-मुहब्बत की कव्वाली, स्त्री पुरुष की युगल कव्वाली, मुकाबले की कव्वाली आदि। इसका यह प्रभाव पड़ा कि कव्वाली आध्यात्मिक शैली होने के साथ-साथ व्यवसायिक रूप धारण कर गई।

निष्कर्ष और स्थापनाएँ—ऊपरलिखित चर्चा से यह ज्ञात होता है कि कव्वाली गायन शैली हमारे समाज का अटूट अंग बन चुकी है, जो कि सूफ़ी सिलसिलों, दरबारों से धूम मचाते हुए दुनिया के कोने-कोने में अपना परचम लहरा चुकी है। जहाँ इस का पासार हुआ, वहीं सूफ़ी संगीत की कुछ गायन शैलियाँ श्रोताओं की नज़रों से ओझिल हो रही है जो कि कव्वाली के असल व समग्र रूप को दर्शाती है। परम्परा सदैव परिवर्तनों से गुज़रती है और इन्हें आत्मसात् भी करती है। उसी प्रकार कव्वाली ने अनेक गायन पड़ाव पार किए हैं और विश्व भर में पहचान बनाई है। बदलते संदर्भों में गायन शैलियों के मूल स्वरूप को कायम रख पाना पूर्णत: संभव नहीं होता परन्तु सूफ़ी संगीत के साधकों, जानकारों और शोधार्थियों का यह कर्त्तव्य है कि वह सूफ़ी संगीत की इन अप्रचलित हो रही गायन शैलियों को सहेज कर रखने का प्रयास ज़रूर करें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सचदेव, रेनू, धार्मिक परम्पराएँ एवं हिन्दुस्तानी संगीत, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1999, पृ. 110
2. गर्ग, लक्ष्मी नारायण, कव्वाली अंक, संगीत कार्यालय हाथरस, जनवरी-फरवरी, 1979, पृ. 6
3. स्वामी वाहिद काज़मी, एक हजार वर्ष पूर्व से वर्तमान तक : कव्वाली का सफर, स्मारिका, प्रयाग संगीत समिति, इलाहाबाद, 2015, पृ. 59
4. श्रीवास्तव, कैलाश पंकज, कव्वाली अंक, संगीत कार्यालय हाथरस, उ.प्र., जनवरी-फरवरी, 1976, पृ. 18
5. सय्यद सरवर चिश्ती, सूफ़ियाना अदबी रिवायत, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, 2009, पृ. 14
6. नरेश, सूफ़ीमत और सूफ़ी काव्य, वाणी प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2007, पृ. 13
7. आचार्य बृहस्पति, मुसलमान और भारतीय संगीत, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1974, पृ. 26
8. उर्दू हिन्दी शब्दकोश, सम्पादन वेद प्रकाश सोनी, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 2014, पृ. 243
9. नदीम अहमद 'नदीम', सूफ़ीमत के कुछ चुनिंदा संकल्प, सामाजिक विज्ञान पत्र, सूफ़ी संगीत विशेष अंक, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, दिसम्बर 2014, पृ. 35

10. साक्षात्कार, सूफ़ी फकीर मीयां शमशुद्धीन साबिरी, देयोबन्ध (मध्य प्रदेश), तिथि 05.11.2010, समय 11.00
11. निवेदिता सिंह, पंजाब में सूफ़ी संगीत की परम्परा, समाजिक और सभ्याचारक सन्दर्भ, समाजिक विज्ञान पत्र, सूफ़ी संगीत विशेष अंक, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, दिसम्बर 2014, पृ. 25
12. हज़रत शेख मकदूम अली हुजवेरी, कशफ–उल–महजूब, रजवी किताब घर 423, उर्दू मार्कट, मटिया महल, जामा मजिस्द, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2011, पृ. 474.
13. साक्षात्कार, खुर्शीद आलम कव्वाल, मुज्जफरनगर, दिनांक 8.5.2013, समय 4.30
14. साक्षात्कार, हरमेश रंगीता कव्वाल, गाँव सियाना, बलाचोर, दिनांक 30.12.2017, समय 2.00
15. साक्षात्कार, शकीर साबरी कव्वाल, फिलौर, दिनांक 22.4.2013, समय 1.30
16. साक्षात्कार, हरमेश रंगीला कव्वाल, गाँव सियाना, बलाचोर, दिनांक 24.04.2013, समय 2.00
17. साक्षात्कार, खुर्शीद आलम कव्वाल, मुज्जफरनगर, दिनांक 8.5.2013, समय 4.30
18. साक्षात्कार, इनायत निज़ामी कव्वाल, मुज्जफरनगर, दिनांक 07.05.2013, समय 5.30
19. साक्षात्कार, हरमेश रंगीला कव्वाल, गाँव सियाना, बलाचोर, दिनांक 24.04.2013, समय 2.00
20. सचदेव, रेनू, Opcit पृ.111
21. साक्षात्कार, हरमेश रंगीला कव्वाल, गाँव सियाना, बलाचोर, दिनांक 24.04.2013, समय 2.00
22. गोस्वामी, सुनील, सूफ़ी संगीत, राग परम्परा के सन्दर्भ में, राज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2010, पृ. 142
23. वही, पृ. 145
24. गर्ग, लक्ष्मी नारायण, Opcit पृ. 37